सरजुग राय और अन्य

बनाम

बिहार राज्य

(बी.पी. सिन्हा और जे.एल. कपूर, न्यायमूर्तिगण)

आपराधिक पुनरीक्षण — दंडादेश में वृद्धि — उच्च न्यायालय की शक्ति — विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपणीय अधिकतम दंडादेश से परे वृद्धि — दं.प्र.सं. (V / 1898), धारा 31 और 439।

अपीलकर्ताओं का विचारण एक सहायक सत्र न्यायाधीश के समक्ष भा.दं.सं. की धारा 395 के अधीन डकैती के अपराध के लिए किया गया। दं.प्र.सं. की धारा 31(3) के अधीन (जैसी वह उस समय थी) सहायक सत्र न्यायाधीश अधिकतम सात वर्ष के सश्रम कारावास का दंडादेश दे सकते थे। उन्होंने अपीलकर्ताओं को दोषसिद्ध किया और प्रत्येक को पाँच वर्ष के सश्रम कारावास का दंडादेश सुनाया। अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय में अपील दायर की और उच्च न्यायालय ने अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में अपीलकर्ताओं को दंड-वृद्धि के लिए कारण बताओ नोटिस जारी की। उच्च न्यायालय ने अपील खारिज कर दंडादेश को दस वर्ष के सश्रम कारावास तक वृद्धि कर दिया।

अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय को दं.प्र.सं. की धारा 439 के अधीन अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपणीय अधिकतम दंडादेश की सीमा से परे दंडादेश में वृद्धि करने की शक्ति प्राप्त थी।

बेड राज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1955) 1 उ.च्.न्या.प्र. 583 — संदर्भित।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील सं. 165/1957

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 4 अगस्त 1955 के 1953 की आपराधिक अपील सं. 699 एवं 1954 की आपराधिक पुनरीक्षण सं. 205 में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष

अनुमति द्वारा अपील, जो 1953 की विचारण सं. 70 में सहायक सत्र न्यायाधीश, द्वितीय न्यायालय, छपरा के दिनांक 12 दिसंबर 1953 के निर्णय एवं आदेश से उद्भूत थी।

जी.सी. माथुर, अपीलकर्ताओं की ओर से।

एस.पी. वर्मा, उत्तरदाता की ओर से।

1957, अक्टूबर 28। न्यायालय का निम्नलिखित निर्णय सुनाया गया —

सिन्हा न्या. — इस अपील में निर्धारण हेतु एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय को अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में, जैसा कि उसने वर्तमान मामले में किया है, अभियुक्त व्यक्तियों पर विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित किए जा सकने वाले अधिकतम दंडादेश की सीमा से परे दंडादेश बढ़ाने की शक्ति प्राप्त है। अपीलकर्ताओं को, अन्यों के साथ, सारण जिले के छपरा के सहायक सत्र न्यायाधीश के समक्ष भा.दं.सं. की धारा 395 के अधीन डकैती के अपराध के लिए विचारण पर रखा गया। उन्हें, दो अन्यों के साथ, भा.दं.सं. की धारा 395 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और सहायक सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 12 दिसंबर 1953 के अपने निर्णय एवं आदेश द्वारा 5 वर्ष के सश्रम कारावास का दंडादेश सुनाया। अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त किया गया। दोषसिद्ध व्यक्तियों ने पटना उच्च न्यायालय में अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में, अपील स्वीकार करते समय, अपीलकर्ताओं को यह कारण बताने के लिए कहा कि उनकी दोषसिद्धियाँ बनाए रखे जाने की स्थिति में उनके दंडादेश में वृद्धि क्यों न की जाए। अपील और दंड-वृद्धि के लिए रुल को उस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा एक साथ सुना गया। उच्च न्यायालय ने दिनांक 4 अगस्त 1955 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा दो अपीलकर्ताओं की अपील स्वीकार कर उन्हें दोषमुक्त किया, किन्तु शेष छह अपीलकर्ताओं के विरुद्ध दोषसिद्धि बनाए रखी। दंडादेश के प्रश्न पर उच्च न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि "डकैती का अपराध अत्यधिक बढ़ गया है। यह एक अत्यंत जघन्य अपराध है क्योंकि निर्दोष व्यक्तियों पर, जब वे अपने घरों में सो रहे होते हैं, हमला किया जाता है और उनका सामान

बलपूर्वक छीन लिया जाता है।" उच्च न्यायालय का इसलिए यह मत था कि पाँच वर्ष का सश्रम कारावास "अत्यंत अपर्याप्त" था। अतः उसने प्रत्येक मामले में दंडादेश को 10 वर्ष के सश्रम कारावास तक बढ़ा दिया। छह अपीलकर्ताओं ने इस न्यायालय में आवेदन किया और केवल दंडादेश के प्रश्न तक सीमित रखते हुए विशेष अनुमति प्राप्त की, यह प्रश्न यह था कि क्या उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय की शक्ति की सीमाओं से परे दंडादेश बढ़ाने का क्षेत्राधिकार था।

डकैती की घटना, जो अपीलकर्ताओं एवं अन्यों के विरुद्ध आरोप का विषय-वस्तु है, 1 और 2 जुलाई 1952 की रात एक अवयस्क रंजीत बहादुर के घर में हुई। मध्यरात्रि के पश्चात 16 या 17 डाकू, विभिन्न प्राणांतक शस्त्रों से पूर्णतः लैस होकर, घर के मुख्य प्रवेश द्वार को कुल्हाड़ी से तोड़कर खोल दिए। घर के भीतर जाकर उन्होंने संदूकें तोड़ दीं और लोहे की तिजोरी से छेड़छाड़ की तथा बीस हजार रुपये मूल्य की वस्तुएँ हटा लीं। घर के निवासियों को काबू कर लिया गया। उनमें से कुछ, घर से बाहर निकलकर, बड़ी आग लगा दिए जो डाकुओं की आक्रमणकारी भीड़ के विरुद्ध जगाई जाने वाली परंपरागत संकट-सूचना है। उस संकट-सूचना पर गाँव के अनेक लोग आ गए, किन्तु गोली लगने के भय से उनमें डाकुओं का सामना करने का साहस नहीं था। वे डाकुओं पर ईंट-पत्थर फेंककर संतुष्ट हो गए जो अपनी लूट लेकर भाग निकले। इस प्रकार प्रतीत होता है कि यह एक गंभीर घटना थी जिसमें घर के निवासियों के जीवन और संपत्ति दाँव पर लगी थी, और स्वाभाविकतः उच्च न्यायालय ने इस अपराध को अत्यंत गंभीरता से लिया।

इस न्यायालय में न्यायमित्र के रूप में उपस्थित अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने, सर्वप्रथम, यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने दंडादेश को 5 से 10 वर्ष तक बढ़ाने में अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया, क्योंकि विचारण न्यायालय स्वयं 7 वर्ष से अधिक के कारावास का दंड नहीं दे सकता था। वैकल्पिक रूप से उन्होंने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष

अपीलकर्ताओं का दंड बढ़ाते समय *बेड राज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*[1] के मामले में इस न्यायालय के अभिवचन को दृष्टिगत नहीं रखा। और अंत में यह तर्क दिया गया कि किसी भी दृष्टिकोण से, इस मामले की परिस्थितियों में 10 वर्ष के सश्रम कारावास का दंडादेश अत्यधिक कठोर है। हमारे मत में इन तर्कों में से किसी में भी कोई सार नहीं है।

जिस मुख्य बिंदु पर विशेष अनुमति प्रदान की गई वह उच्च न्यायालय की उस दंडादेश से अधिक दंड अधिरोपित करने की सक्षमता का प्रश्न है जो दं.प्र.सं. की धारा 31(3) के अधीन विद्वान सहायक सत्र न्यायाधीश द्वारा अधिरोपित किया जा सकता था। विद्वान विचारण न्यायाधीश 7 वर्ष से अधिक के कारावास का दंड नहीं दे सकते थे। तर्क यह है कि उच्च न्यायालय दंडादेश को 5 से 7 वर्ष तक बढ़ा सकता था, इससे अधिक नहीं। इस तर्क को इस विचार के आधार पर प्रवर्तित करने का प्रयास किया गया है कि यह उपधारित किया जाना चाहिए कि विद्वान सहायक सत्र न्यायाधीश को अभियुक्त व्यक्तियों के विचारण का दायित्व इस पूर्ण जानकारी के साथ सौंपा गया था कि दोषसिद्धि पर अभियुक्त व्यक्तियों को 7 वर्ष से अनधिक कारावास का दंड दिया जा सकता है। उच्च न्यायालय अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा की गई किसी भी त्रुटि को सुधारने के लिए ही अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता था। अतः उच्च न्यायालय अधिक से अधिक यही कह सकता था कि विचारण न्यायाधीश को वह उच्चतम दंड देना चाहिए था जो उसे संहिता द्वारा अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत किया गया था। यह आगे भी तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण की अवस्था पर यह नहीं कह सकता था कि विचारण न्यायालय को 7 वर्ष के सश्रम कारावास से अधिक दंड दिया जाना चाहिए था।

उच्च न्यायालय की दंडादेश में वृद्धि करने की शक्ति संहिता की धारा 439 की उप-धारा (1) में निहित है, जो उच्च न्यायालय को संहिता के अधीन अपील के न्यायालय की शक्तियाँ

1*(1) [1955] 2 उ.च्.न्या.प्र. 583*

तथा दंडादेश में वृद्धि की शक्ति भी प्रदान करती है। उप-धारा (1) स्वयं में दंडादेश में वृद्धि की शक्ति पर सीमा के कोई शब्द नहीं रखती। अतः उच्च न्यायालय किसी विशेष अपराध के लिए भा.दं.सं. द्वारा विहित अधिकतम सीमा तक कोई भी दंडादेश अधिरोपित कर सकता है। इस मामले में इसलिए उच्च न्यायालय भा.दं.सं. की धारा 395 के अधीन आजीवन कारावास का अधिकतम दंड अधिरोपित कर सकता था। क्या दं.प्र.सं. में ऐसा कुछ है जो उस शक्ति को सीमित करता है? यह तथ्य कि मामले का विचारण दंडादेश के विषय में सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को सौंपा गया था, उच्च न्यायालय की उचित एवं पर्याप्त दंडादेश अधिरोपित करने की शक्ति पर सीमा लगाने के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। यह कि विधायिका का आशय सत्र न्यायालय द्वारा संचालित विचारण में उच्च न्यायालय की पर्याप्त दंडादेश देने की शक्ति पर सीमा लगाने का नहीं था, दं.प्र.सं. की धारा 439 की उप-धारा (3) के उपबंधों से स्पष्ट होता है, जो इन शब्दों में है:

"(3) जहाँ इस धारा के अधीन निपटाया गया दंडादेश किसी ऐसे दण्डाधिकारी द्वारा पारित किया गया हो जो धारा 34 के अधीन अन्यथा कार्य कर रहा हो, तो न्यायालय उस अपराध के लिए, जिसे ऐसे न्यायालय की राय में अभियुक्त ने किया है, उससे अधिक दंड नहीं देगा जो ऐसे अपराध के लिए प्रेसीडेंसी दण्डाधिकारी या प्रथम वर्ग के दण्डाधिकारी द्वारा दिया जा सकता था।"

संहिता की धारा 32 वह दंड निर्धारित करती है जो दण्डाधिकारी सामान्यतः अधिरोपित कर सकते हैं, जो प्रेसीडेंसी दण्डाधिकारियों और प्रथम वर्ग के दण्डाधिकारियों के मामले में (अर्थदंड के सभी संदर्भों को छोड़कर) दो वर्ष से अनधिक कारावास की अवधि है। किन्तु कुछ विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में धारा 30 सरकार को जिला दण्डाधिकारी या प्रथम वर्ग के दण्डाधिकारी को दण्डाधिकारी के रूप में मृत्युदंड से दंडनीय न होने वाले सभी अपराधों का विचारण करने की शक्ति प्रदान करने का अधिकार देती है। धारा 30 के अधीन इस प्रकार सशक्त किया गया

दण्डाधिकारी 7 वर्ष या उससे कम की अवधि के कारावास का दंड दे सकता है। इस प्रकार सहायक सत्र न्यायाधीश की धारा 31(3) के अधीन और धारा 30 के अधीन विशेष रूप से सशक्त दण्डाधिकारी की कारावास का दंड अधिरोपित करने की शक्तियाँ समान हैं, क्योंकि धारा 31(3) और धारा 34 के शब्द लगभग समरूप हैं। धारा 439(3) के शब्दों से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय की दंड अधिरोपित करने की शक्ति पर एकमात्र सीमा उन दण्डाधिकारियों के अतिरिक्त अन्य दण्डाधिकारियों द्वारा विचारित मामलों के संबंध में है जो धारा 30 के अधीन विशेष रूप से सशक्त नहीं हैं और इस प्रकार धारा 34 के अधीन दंड की उच्चतर शक्तियों से युक्त नहीं हैं। उपर्युक्त उप-धारा (3) धारा 30 के अधीन विशेष रूप से सशक्त दण्डाधिकारी द्वारा निपटाए गए मामलों में उच्च न्यायालय की शक्तियों पर कोई सीमा नहीं लगाती। अतः ऐसे मामले में उच्च न्यायालय को उस दंड से अधिक दंड अधिरोपित करने की शक्ति है जो ऐसे दण्डाधिकारी द्वारा अधिरोपित किया जा सकता था। उस उप-धारा का सत्र न्यायालय द्वारा संचालित विचारण से कोई संबंध नहीं है। यदि उच्च न्यायालय धारा 30 के अधीन विशेष रूप से सशक्त और धारा 34 के अधीन कार्य करने वाले दण्डाधिकारी द्वारा अधिरोपित किए जा सकने वाले अधिकतम दंडादेश से परे दंडादेश बढ़ा सकता है, तो सहायक सत्र न्यायाधीश द्वारा संचालित विचारण में उच्च न्यायालय की दंड बढ़ाने की शक्ति को अपीलकर्ताओं की ओर से सुझाए गए तरीके से सीमित मानने का कोई कारण नहीं है। धारा 439 की उप-धारा (3) इस प्रकार यह स्पष्ट करती है कि उच्च न्यायालय को भा.दं.सं. द्वारा विहित अधिकतम सीमा तक दंडादेश बढ़ाने की शक्ति पर कोई सीमा नहीं है, सिवाय उन मामलों के जो दं.प्र.सं. की धारा 30 के अधीन विशेष रूप से सशक्त दण्डाधिकारियों के अतिरिक्त अन्य दण्डाधिकारियों द्वारा विचारित किए गए हों। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने हमें उचित रूप से सूचित किया कि कुछ उच्च न्यायालयों के कुछ सूचित निर्णय हैं जो उनके तर्क के विरुद्ध गए हैं, और कोई निर्णय नहीं है जिसने उनके तर्क के समर्थन

में कोई मत अपनाया हो। हमारे मत में दं.प्र.सं. में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो अपीलकर्ताओं की ओर से सुझाए गए तरीके से उच्च न्यायालय की शक्ति को सीमित करता हो, और ऐसे कोई कारण नहीं हैं जो उस मत को अपनाने वाले उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध हों। अपीलकर्ताओं की ओर से उनके द्वितीय तर्क के समर्थन में जिस मामले पर आश्रय लिया गया [*बेड राज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* (1)], वह भी उसी निष्कर्ष की ओर संकेत करता प्रतीत होता है जैसा कि पृ. 584 पर निम्नलिखित अभिमतों से प्रकट होगा:

"अब, यद्यपि उच्च न्यायालय की दंड बढ़ाने की शक्ति पर कोई सीमा नहीं रखी गई है, फिर भी यह एक न्यायिक कार्य है और विवेक के प्रयोग से संबंधित सभी न्यायिक कार्यों की भाँति, सुपरिचित न्यायिक रेखाओं के साथ किया जाना चाहिए।"

द्वितीय तर्क पर, इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंडादेश का प्रश्न विवेक का विषय है जिसका प्रयोग न्यायिक तरीके से किया जाना चाहिए, अर्थात् विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश में हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए और तब तक उसे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए जब तक कि अपीलीय न्यायालय साक्ष्य में प्रकट संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष न निकाले कि अधिरोपित दंडादेश अपर्याप्त है। वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने यह दर्शाया है कि डकैती के अपराध की घटनाएँ इस सीमा तक बढ़ गई हैं कि सिद्ध गंभीर डकैती के मामलों में, जैसे कि वर्तमान मामला, कठोर दंड अपेक्षित है। अतः उच्च न्यायालय 10 वर्ष के सश्रम कारावास का दंडादेश अधिरोपित करने में उचित था। जैसा कि उपर्युक्त संकेत किया गया है, मामले में प्रकट परिस्थितियों के दृष्टिगत यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च न्यायालय द्वारा बढ़ाया गया दंडादेश अत्यधिक है। अपील तदनुसार खारिज की जाती है।

अपील खारिज।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।